फरीदाबाद मजदूर समाचार

दुनियां को बदलने के लिए मजदूरों को खुद को बदलना होगा

इस अंक में

- मैटल बॉक्स
- रेमिंगटन
- मंडी में मस्तिष्क
- वर्कशाप मजदूर
- पुलिस बिना समाज

नई सीरीज नम्बर 68 | फरवरी 1994 | 1/-

हमारी कोशिश

समाज की एक धुरी है जिसके इर्द-गिर्द हमारी निजी तथा सामाजिक जिन्दगियाँ घूम रही हैं।

कार्यस्थल पर आज हमारे काम की धुरी कम से कम लागत पर अधिक से अधिक और अच्छे से अच्छा काम किया जाना है। इसलिये फैक्ट्रियों में मैनेजमेंटें वेतन-भत्ते कम से कम करने, वर्क लोड बढ़ाने, बढिया क्वालिटी का काम करवाने और वर्किंग कन्डीशनों पर कम से कम खर्च करने की लगातार कोशिशें करती हैं। मजदूरों और मैनेजमेंटों के बीच हर समय विवाद और खींचातान का होना इसलिये लाजिमी है। मैनेजर धार्मिक या ईमानदार या बढिया ढंग से बात करने वाले हों तो भी इस हकीकत में कोई फर्क नहीं पड़ता। मैनेजमेंट कितने ही पैसों वाली क्यों न हो, एम डी - चेयरमैन कितने ही खुले दिल वाले क्यों न हों, यह वास्तविकता छाती ताने खड़ी रहती है। वरकर कभी-कभार जब किसी को मजदूर रखता है तब यह हकीकत और धुरी पूरी स्पष्टता के साथ उसकी आँखों के सामने उसके अपने हर कदम में होती है।

रोटी-कपड़ा-मकान-शिक्षा-मनोरंजन-काम के लिये बाजार जाना आज एक अनिवार्यता है। खरीद-बिक्री और भाव-तोल के इर्द-गिर्द चीजें घूमती हैं। बेचने वालों की कोशिश जहां यह रहती है कि अधिक भाव में कम और - अथवा घटिया चीज दें वहीं खरीददार थोड़े पैसों में अच्छी और ज्यादा चीज पाने के प्रयास करते हैं। दिखावा और झूठ-फरेब तथा चिक-चिक बाजार के अनिवार्य फल हैं। बाजार में वस्तुओं की खरीद-बिक्री के समय भाव-तोल की ही तरह काम की मंडी में नौकरी के लिये नाप-तोल और मोल-भाव होते हैं। इस सब से हम सब अच्छी तरह वाकिफ हैं।

एक छत तले रहने वालों, एक तवे की रोटी खाने वालों के रिश्ते आमदनी और रुपये-पैसे के खर्च के इर्द-गिर्द बुनते-टूटते हैं। स्त्री और पुरूष की प्यार-मोहब्बत तथा रोने-पीटने में पैसों का हिसाब-किताब एक बड़ी भूमिका अदा करता है। बच्चों को दूध-खिलौने-डाँट डपट हों चाहे बुजुर्गों का आदर-तौहीन, रुपया-पैसा परदे के पीछे से झांकता नजर आता है।

हमारे घूमने-फिरने और अन्य शौक पूरा करने की इच्छाओं पर भी खरीद-बिक्री, भाव-तोल, रुपये-पैसे के हिसाब-किताब का साया मंडराता रहता है। इस वजह से प्रियजनों से मिलना-जुलना तथा फुर्सत के क्षण तक बोझ महसूस होने लगते हैं।

जाहिर है कि खरीद-बिक्री और भाव-तोल को हम राजी-खुशी से करने-भुगते से तो रहे। अनिच्छा वाले काम हम मन मार कर करते हैं। भोजन की चिन्ता, तन ढकने की जरूरत, सिर पर छत के लिये हमारे तन और मन को जला रहे इस सामाजिक ताने-बाने को क्या हम बर्दाश्त करेंगे अगर पुलिस और फौज का डर हमें न हो?

सार्वजनिक स्थानों की कमी की वजह से होते विवाद और उपलब्ध स्थान के लिये खींचा-तान आज आम बात बन गई है। खुले स्थानों के बड़े भाग पर तो सरकारों ने कब्जे कर ही लिये थे, बाकी बचे सार्वजनिक स्थानों के काफी भाग पर मन्दिर आदि ने कब्जे कर लिये हैं और कर रहे हैं। थोड़ी-बहुत बची-खुची जगह के लिये खुले में साँस लेने-बैठने-सुस्ताने आये लोगों, बातचीत के लिये पहुँचे लोगों, ताश की टोलियों और खेलने को मचलते बच्चों के बीच डाँट-डपट, नाक-भौं सिकोड़ना, तू-तड़ाक रोजाना की चीज बन गई हैं।

उठने-बैठने, खेलने-कूदने के लिये सार्वजनिक स्थल की आवश्यकता के सामान्य-से मामले तक में हमारी जरूरत की चीज पर हमारा अपना नियन्त्रण नहीं है। सामाजिक जीवन को प्रभावित करने वाले बड़े मामलों में तो हमें कोई पूछता तक नहीं है – अक्सर हमें उनके बारे में कोई जानकारी तक नहीं होती, नहीं होने दी जाती।

मानव जीवन, अपने जीवन और समाज को बेहतर ढंग से समझने के लिये इस अखबार में हमारी कोशिश है कि हम समाज की धुरी को समझें।

हमारी समझ है कि यह धुरी न तो सदा से है और न यह सदा रहेगी। सामाजिक प्रक्रिया के एक चरण में यह धुरी पैदा हुई है।

मौजूदा सामाजिक ताने-बाने और इसकी धुरी के खिलाफ उभरते विरोधों की जानकारी देने के साथ-साथ ऐसे विरोधों को प्रभावकारी बनाने पर विचार-विमर्श की हम कोशिश करते हैं। हम इस प्रश्न पर ध्यान केन्द्रित करने का प्रयास करते हैं कि मजदूर पक्ष अपनी ताकत किस प्रकार बढा सकता है। एक फैक्ट्री में मजदूरों द्वारा उठाये कदम तथा एक फैक्ट्री में मैनेजमेंट द्वारा मजदूरों पर किये गये हमले की जानकारी अन्य मजदूरों को देने की कोशिश को मजदूर पक्ष के निर्माण की दिशा में हम एक कदम मानते हैं। इस सिलसिले में हम मैनेजमेंटों की कमजोरियों-मजबूरियों की जानकारी देने की कोशिश भी करते हैं।

लेखों में-विश्लेषणों में हम यह तथ्य उभारने का प्रयास करते हैं कि समाज की उपरोक्त धुरी आज सम्पूर्ण पृथ्वी को अपने आगोश में लिये है। सब जगह आज एक जैसी जिन्दगी, एक प्रकार के विरोध और एक जैसी समस्याओं का बोलबाला है। इस अखबार में हम अलग-अलग समय और अलग-अलग जगह पर हो रहे मजदूर एक्शनों की जानकारी जुटाते हैं ताकि हम लड़ने और आगे बढ़ने के लिये अनुभवों से लैस हो सकें और कम ठोकरें खायें।

तथ्यों और आलोचना द्वारा हम यह दिखाने की कोशिश करते हैं कि शक्ति की भक्ति और शक्ति का प्रदर्शन जो कि दीर्घकाल से सफलता के मापदन्ड बने हुये हैं और आज संस्कृति की धुरी हैं, वे हम सब के लिये घातक, मानवद्रोही साबित हो चुके हैं।

मजदूरों के किसी भी अखबार में आन्दोलनों की रिपोर्टों में उन बाधाओं का पता लगाना जो कि बन्धनों का काम करती हैं एक अनिवार्य आवश्यकता है। ऐसी बाधायें चाहे हमारे अपने आचार-विचार में हों चाहे मजदूरों के विरोध में काम करने वाली शक्तियों की हों, खुले विचार-विमर्श द्वारा इनकी स्पष्ट आलोचना को उभारना हमारी कोशिश है।

इस अखबार में हम उन सम्भावनाओं को प्रस्तुत करने की कोशिश करते हैं जो कि हमारे जीवन को बेहतर बना सकती हैं तथा जिन्हें वास्तविकता में बदलने की हमारी क्षमता है। एक नये समाज की क्षमता जिसमें रोटी और सुरक्षा की चिन्ता जीवन की धुरी नहीं होगी बल्कि मनुष्य-मनुष्य के बीच मानवीय रिश्ते समाज की धुरी होंगे।

अपने काम में हमें कई बाधाओं का सामना करना पड़ रहा है :

हमारे जीवन को दुख-दर्द में डुबोये इस समाज व्यवस्था का पक्ष लेते विभिन्न स्तर के तर्क-वितर्कों का व्यापक प्रचार-प्रसार है। इनमें सबसे घातक वे निराशावादी विचार हैं जो कि यह कहते हैं कि हम कुछ नहीं कर सकते क्योंकि हम तुच्छ हैं। इसी कैटेगरी में वह सोच है जो सामुहिक समस्याओं पर सोचने-समझने-फैसले लेने की जिम्मेदारी चन्द लोगों को सौंपने की वकालत करती है।

रोज-रोज की उखाड़-पछाड़ हमारे दिमाग इतने सुन्न कर देती है कि बेहतर जीवन की इच्छा तक हमें हवाई, काल्पनिक लगने लगती है।

इस अखबार से जुड़े हम लोगों के पास साधनों का अभाव है। रुपये-पैसे की दिक्कतें हैं। काम में हाथ बटाने वाले, लिखने-पढ़ने वाले लोगों की कमी है। लेकिन इन से हट कर और वास्तव में महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या मजदूरों को उनके अपने अखबारों की जरूरत है? अगर हाँ, तो. . . .

दूर चट्टान में से
इसराज सी आवाज
उभरती है पर फैल नहीं पाती

– गज़ाला नर्गिस

मजदूर लाइब्रेरी, आटोपिन झुग्गी, एन. आई. टी. फरीदाबाद -121001 (यह जगह बाटा चौक के पास है)

फरार किससे ?

कमरे से
गली से
अपने ही शहर से
बताओ, फरार किससे?
बातों से
या, उन आँखों से
बताओ, फरार किससे ?

देखो,
जब वो भागा था बंद कमरे से
तो पहुँचा उस गली में
फिर उस गली में
और फिर उस. . .

तुम कहाँ जाओगे?
अपने कमरे की सीलन से बचकर
जहाँ फिर भी होता है धूप का बिछना, बिखरना
और अब तो आ बसी हैं तुम्हारे ही घर में, सारी गलियाँ
वो आँखें भी तुम्हें आज़ाद कर रही हैं
तुम्हें कोई नहीं रोकेगा
तुम्हारे अंदर बसा शहर भी हो गया है चुप, नहीं बोलेगा
कहो, फरार किससे ?
चाहे तालाब का किनारा हो या बाज़ार
वो सीलन तुम्हारे कमरे से
उतर आई है तमाम रास्तों में
किससे बचना चाहते हो
बताओ, फरार किस ओर ?

और बस यूँ ही कभी-कभी नज़र
मेरे अपने खुले दरवाज़े की तरफ उठती रहती है
और सोचती हूँ मैं
फरार किससे ?

– गज़ाला नर्गिस

वर्कशाप मजदूर की कलम से

साहब : तुम कल छुट्टी क्यों कर लिया?

वरकर : जी बाबूजी जरूरी काम था।

साहब : जानता है तु छुट्टी करता है तो मेरा तीन सौ रुपये का लोस होता है। आज से छुट्टी की तो अपना हिसाब ले जाना।

साहब पेमेन्ट के टाइम : तू पूरे महीना में तो एक पैसे का काम नहीं किया इतना ओवरटाइम कहाँ से हो गया? अच्छा यह ले और बाकी 25 तारीख को लेना।

वरकर : और ओवरटाइम कब देंगे साहब?

साहब : अगले महीने जब पैसा आयेगा तो देंगे।

वर्कशाप की नौकरी भैंसा बुग्गी में चलने वाले भैंसे से भी बदतर है। वर्कशापों में प्रोडक्शन का कोई टारगेट नहीं होता। पावर प्रेस हो या लेथ मशीन, मिलिंग हो या ड्रिलिंग मशीन, इलेक्ट्रिकल ग्राइन्डर हो या सरफेस ग्राइन्डर, इन पर वरकर को कितना प्रोडक्शन देना है इसकी कोई सीमा नहीं होती। इसलिये कोई मजदूर पेशाब या लैट्रीन करने चला गया तो फोरमैन की पूछताछ शुरू हो जाती है। अगर उसी बीच साहब आ गया तो साहब की चार बात सुननी पड़ती हैं : "पूरा दिन पेशाब-टट्टी में लगा देते हो। काम करने से मतलब नहीं है और ऊपर से पेमेन्ट चाहिये। कहाँ से मिलेगी पेमेन्ट? मैं अपने घर से थोड़े ही दूँगा!" इतना कह कर बात खत्म नहीं हुई या साहब को सन्तोष नहीं हुआ तो और भी उलटा-पुलटा सुनना पड़ता है। लेकिन मजदूर क्या करें? इतना सुनने के बाद भी झख मार कर काम पर लग जाते हैं। झाड़ इतनी और पेमेन्ट कब मिलेगी इसका कोई पता नहीं। किस्तों में पेमेन्ट मिलती है। कभी राशन वाले का तगादा तो कभी मकान मालिक की किराये के लिये झाड़ सुन कर दिमाग में टेनशन लिये मजदूर डियूटी पर जाता है। पावर प्रेस चलाते-चलाते थक जाने पर या दिमागी टेनशन के कारण एक्सीडेन्ट हो जाता है। जिस किसी का अंगूठा या चार उँगली कट जाती हैं उस मजदूर को साहब नौकरी से निकाल देते हैं। डर के कारण सीधे मुँह कोई दूसरा वरकर बोलता भी नहीं कि कहीं उसकी नौकरी पर खतरा ना आ जाये।

गलियों में नजदीक-नजदीक वर्कशाप हैं। जब पावर चली जाती है तब गलियों में जनरेटरों की आवाज और इधर मशीनों का शोर हमारे सिर व कानों से ऐसे टकराती हैं जैसे मालूम पड़ता है कि सिर पर ही हथौड़ा मारा जा रहा है। जनरेटरों के धूँये से गली में और छोटे से शेड में दम घुटता है। साहब लोग ऐसे टाइम पर साफ हवा लेने रोड़ पर या चाय की दुकान पर नजर आते हैं। लेकिन मजदूर कहाँ जाये? हमें तो प्रोडक्शन निकालना है।

वर्कशापों में हैल्पर की पेमेन्ट मात्र पाँच से छह सौ रुपये है। आपरेटरों को हजार-पन्द्रह सौ मिलते हैं। काम है तो साहब लोग सिर पर चढ़ कर काम लेते हैं, काम नहीं है तो कान पकड़ कर बाहर निकाल देते हैं।

इतनी समस्याओं का समाधान एक वरकर के बस का नहीं है। मिल कर कदम उठायेंगे तभी कामयाब होंगे।

29-1-94 – शेष अगले अंक में

तू डाल-डाल हम पात-पात

मलेशिया में सरकार और मैनेजमेंटों ने अपने कन्ट्रोल को पुख्ता करने के लिये कानूनों का जाल इस कदर कस रखा है कि मजदूर अगर कानूनी राह से अपना विरोध प्रकट करना चाहते हैं तो ऐसी राह वहाँ नहीं है। कमरतोड़ वर्कलोड, घटिया वर्किंग कन्डीशन, कम वेतन और फैक्ट्री के अन्दर जासूसों का जाल एक भयावह माहौल निर्मित करते हैं जिसमें मजदूरों को काम करना पड़ता है। ऐसे में कुछ महिला मजदूरों ने विरोध की एक अनोखी राह तलाश की। माइक्रोस्कोप से झाँक कर पुर्जे जोड़ने वाली एसेम्बली लाइन पर एक महिला मजदूर ने माइक्रोस्कोप से प्रेतात्मा दिखाई देने की बात कही और बेहोश हो गई। मिनटों में पूरी एसेम्बली लाइन पर मजदूर बेहोश हो गये। यह कई फैक्ट्रियों में और कई बार होता है। मैनेजमेंटें झाड़-फूँक करवाती हैं, बकरों की बलि देती हैं और विज्ञान का प्रचार करती हैं। बेचारे सुपरवाइजर-बेचारे मैनेजर-बेचारी मैनेजमेन्टें !

हजारों मील दूर, अमरीका की महिला मजदूरों ने मलेशिया की अपनी मजदूर बहनों से विरोध का यह नया तरीका सीखा और इसमें रचनात्मक परिवर्तन किया। एक शू फैक्ट्री में चिपकाने के लिये एक नये गोंद के डिब्बे जब खोले गये तब कुछ महिला मजदूरों को चक्कर आने लगे और उन्होंने काम बन्द कर दिया। अगले दिन कई मजदूरों ने सिर-दर्द, चक्कर आने, आँखों के आगे धुँधलापन, शरीर टूटने, छाती में दर्द आदि की शिकायतें की। घबराई हुई मैनेजमेन्ट ने बहाना बना कर फैक्ट्री बन्द की क्योंकि फैक्ट्री में जहरीली गैस की अफवाह चारों ओर फैल गई थी। गैस मास्क पहने जाँचकर्ताओं ने फैक्ट्री के चप्पे-चप्पे की जाँच की पर किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सके। एक अन्य फैक्ट्री के मजदूरों ने इस राह पर दो कदम और बढ़ाये। डेढ साल में बीस बार फैक्ट्री को खाली करवा कर मैनेजमेंट को जाँच व सफाई करवानी पड़ी।

न तो मलेशिया में और न ही अमरीका में मैनेजमेंटें भूत और गैस को पकड़ पाई हैं। दोनों जगह मैनेजमेन्टों ने मनोवैज्ञानिकों को रिसर्च का न्योता दिया। खोज-शोध के पश्चात मनोवैज्ञानिकों की रिपोर्ट मजदूरों की बजाय मैनेजमेन्टों की मानसिकता की अच्छी झलक दिखाती हैं। रिपोर्टों के अनुसार ऐसी घटनायें वर्क लोड में वृद्धि और सख्ती के नये कदमों के बाद होती हैं। कार्यस्थल पर कम रोशनी, ताजा हवा की कमी, बदबू, दबाव के तहत लगातार नीरस काम करना वह मानसिक तथा शारिरिक तकलीफें हैं जो ऐसी घटनाओं की जड़ में हैं।

(जानकारी हमने 'वीमेन इन दी ग्लोवल फैक्ट्री' पुस्तिका से ली है।)

बिना पुलिस के समाज के बारे में हम क्यों न सोचें?

फरीदाबाद जिले के होडल कस्बे में 16 जनवरी को "पुलिस के प्रति सामाजिक जागरूकता अभियान" के तहत जिला पुलिस ने भारी जनसमूह एकत्र किया। डी आई जी गुड़गाँव रेंज और एस पी फरीदाबाद ने जनसमूह को सम्बोधित किया।

डी आई जी ने कहा : समाज का हर आदमी जब राक्षस होता जा रहा है तो पुलिस कैसे बच सकती है, क्योंकि पुलिस भी समाज का अंग है। जो हालात देश में देखने को मिल रहे हैं भविष्य में भी यही हाल रहा तो लोगों के मुँह सूख जायेंगे, हँसी गायब हो जायेगी। इस तरह का माहौल रहेगा तो आगे सभी कार्य पुलिस करेगी।

एस पी ने कहा : लोगों की सोच अब यह कह रही है कि ऐसा समाज होना चाहिये जिसमें पुलिस न हो। अगर ऐसा समाज बन जाये तो सबसे ज्यादा खुशी हमें होगी। परन्तु यह सम्भव नहीं है।

आज पुलिस और समाज के गहरे रिश्ते डी आई जी और एस पी की बातों में भी पूरी स्पष्टता के साथ उभरे हैं। पुलिस से आज हर किसी का वास्ता पड़ता है और सब लोग पुलिस के बारे में काफी कुछ जानते हैं। संक्षेप में : मौजूदा सामाजिक ताने-बाने को बनाये रखने के लिये प्रत्येक राजनीतिक क्षेत्र में सुपरवाइजर का रोल पुलिस के कार्य की धुरी है। मौजूदा सामाजिक ताना-बाना मंडी के नियमों के अनुसार उत्पादन और वितरण का जाल है। खरीद-बिक्री का सिलसिला अपने में विवाद-खींचातान-टकराव लिये है। और, भला पचास रुपये की ध्याड़ी पर किसी से पाँच सौ रुपये का प्रोडक्शन बिना पुलिस के सम्भव है क्या? विशाल बिल्डिंगों का निर्माण करने वाले मजदूरों को पुलिस का डर नहीं हो तो वे उनमें रहने न लगें? बड़ी-बड़ी प्रेसों में काम कर रहे वरकरों को पुलिस का भय नहीं हो तो उन्हीं प्रेसों में वे अपनी जिन्दगी के बारे में बड़ी संख्या में अखबार-पत्रिकायें नहीं छापेंगे?

यह काफी स्पष्ट है कि पुलिस और कुछ नहीं बल्कि एक प्रशासनिक तन्त्र है जिसके पास हथियार होते हैं और वह हमें हिरासत में ले सकती है। कितने दिन हम बन्द रहेंगे यह अदालतें तय करती हैं। हमारे आवागमन, हमारे वेतन विवादों और हमारी बोलने की स्वतंत्रता आदि को अपने कन्ट्रोल में रखने के लिये पुलिस द्वारा किया जाता हस्तक्षेप पुलिस का रूटीन कार्य है।

उपरोक्त पर ध्यान केन्द्रित करते समय हम यह न भूलें कि हमारे द्वारा एक-दूसरे की इच्छाओं-भावनाओं के प्रति धैर्य के अभाव से पैदा होती हिंसा पुलिस को एक आवश्यक बुराई के तौर पर विस्तृत स्वीकृति का आधार प्रदान करती है।

बिना पुलिस वाला समाज बनाना एक खुले माहौल का निर्माण करना है। व्यक्ति व समूह ऐसे माहौल में खुल कर अपनी बात कह सकते हैं। ऐसा खुला माहौल विवादों को विचार-विमर्श द्वारा निपटाने के लिये आधार प्रदान करता है। व्यक्ति और समूह के चौतरफा विकास के लिए भय रहित वातावरण एक अनिवार्य आवश्यकता है। इसके लिये हथियारों की समाप्ति जरूरी है। इस सिलसिले में, सामाजिक ताना-बाना जिसके लिये हथियारबन्द दस्तों का होना एक अनिवार्य आवश्यकता होती है उस सामाजिक गठन पर सवाल उठाना एक महत्वपूर्ण कदम है।

जाहिर है कि हथियारों से लबालब विश्व के किसी एक क्षेत्र में हथियारों की समाप्ति सम्भव नहीं है। लेकिन अगर हम अस्त्र-शस्त्र विहीन समाज चाहते हैं तो हमें दुनियाँ को एक इकाई के तौर पर लेना होगा और विरासत में मिले लिंग, देश, धर्म आदि के पूर्वाग्रहों को छोड़ कर संसार के पैमाने पर फैलते विभिन्न स्तर के तालमेलों की श्रृंखलायें गूँथनी होंगी।

बढ़ते वर्क लोड के साथ तनाव में वृद्धि आज खाकी वर्दी वालों की भी नियती बन गई है। डी आई जी का आक्रोश इसकी एक अभिव्यक्ति है तो एस पी की बिना पुलिस वाले समाज की चाह इसकी दूसरी अभिव्यक्ति है। बिना पुलिस का समाज असम्भव नहीं है इसलिये एस पी को अपनी इच्छा का गला घोंटने की बजाय इच्छा-पूर्ती के लिये प्रेरित होना चाहिये।

मंडी में मस्तिष्क

सब्जी काटते वक्त जब हाथ थोड़ा चिर जाता है, दरवाजे के पाट में उँगली फँस जाती है, बिजली का शॉक लग जाता है या फिर गर्दन में झटका लगने, पैर में मोच आने, दाँत के चीस मारने पर होने वाली दर्द-तकलीफ के प्रति अपने रूख को ध्यान में रखते हुये दूसरों के प्रति कदम-कदम पर उठते नाक पर घूँसा मारने, दाँत तोड़ देने, गोली मार देने के अपने भावों-विचारों पर गौर कीजिये। ऐसा नहीं है कि मनुष्य होते ही बुरे हैं और वह एक-दूसरे को दुख पहुँचा कर खुश होना चाहते हैं। वास्तव में आज, हमारे हर रोज के हर क्षण, हमें जिन्दा रहने के लिये सतत संघर्ष करना पड़ता है और इस संघर्ष में सब एक-दूसरे के खिलाफ भिड़े हैं। पानी के लिये छीना-झपटी, ट्रेन में - बस में चढ़ने के लिये धक्का-मुक्की, नौकरी के लिये आपा-धापी आज हमारे जीवन की हकीकत के बुनियादी पहलू हैं।

हमारे रोजमर्रा के जीवन की यह वास्तविकता है जो कि बाहुबल, बुद्धिबल, प्रतिष्ठाबल और धनबल को हम सब के लिये आदर्श बनाती है। निजी तौर पर और गिरोहबन्दियों के रूप में शक्ति की भक्ति और शक्ति का प्रदर्शन एक तर्कसंगत आवश्यकता के रूप में उभरते हैं। दूसरों, अपनों व पराये दोनों, से ऊँचा होने अथवा उनका अपने से नीचा होने पर आनन्द प्राप्त होता है। दूसरों से ऊपर होने के लिये स्वयं दुख-तकलीफ उठाना सद्गुण बन जाते हैं। अति दुख-दर्द झेलना वीर गाथाओं का रूप ले लेता है। यह व्यक्ति और समूह, दोनों के स्तर पर होता है। और इस सब का परिणाम है अथाह पीड़ा, व्यक्ति तथा सम्पूर्ण मानव समूह, दोनों की। 1939-1945 में ही युद्ध में पाँच करोड़ लोग मरे।

लेकिन हर एक का हर एक के खिलाफ होना कोई सनातन चीज नहीं है। यह न तो अनादि काल से है और न अनन्त समय तक इसका रहना लाजिमी है। प्रत्येक का प्रत्येक के खिलाफ होना सामाजिक प्रक्रिया में उभरे उत्पादन और वितरण के एक तौर-तरीके तथा उसे बनाये रखने के प्रयासों का परिणाम है। उत्पादन और वितरण की यह अरेन्जमेन्ट न तो कोई अबुझ पहेली है और न ही यह अपरिवर्तनीय है। बल्कि, यह साफ-साफ दीख रहा है कि मंडी के होने का अनिवार्य परिणाम है हर एक का हर एक के खिलाफ होना। और फिर, आविष्कारों की एक अटूट व तीव्रतर बढती श्रृंखला द्वारा मानव श्रम की उत्पादकता में वृद्धि छलाँगों में हुई है तथा हो रही है। इसने सम्पूर्ण मानव समुदाय के समुचित जीवनयापन की आवश्यकताओं से भी अधिक के निर्माण की क्षमता पैदा कर दी है। उत्पादन की हमारी यह क्षमता उत्पादन-वितरण के संचालन के लिये मंडी के होने पर अधिकाधिक सवाल खड़े कर रही है। बहुतायत में उत्पादन की क्षमता के कारण मंडी में तीव्र होती होड़ देशों के अन्दर और देशों के बीच तनावों-टकरावों की श्रृंखला लिये है। ऐसे में मंडी और उसकी खरीद-बिक्री वाली प्रणाली को बनाये रखने के प्रयासों का अनिवार्य परिणाम है सतत शक्तिशाली होती पुलिस तथा फौज और दंगे-फसाद तथा युद्धों की बढ़ती विनाशलीला। इस सब ने उत्पादन, वितरण और नियन्त्रण की मंडी व्यवस्था के स्थान पर प्रोडक्शन व डिस्ट्रीब्यूशन के एक नये तौर-तरीके की स्थापना को हमारे लिये एक अरजेन्ट आवश्यकता बना दिया है। यह मार्केट के परस्पर-विरोध की जगह परस्पर-सहयोग पर आधारित होता लगता है।

पर लगता है कि मंडी की प्रक्रिया से गुजरते समय शायद ऐसा कुछ होता है कि इतनी सरल, सीधी-सादी बात एक अबुझ जटिल पहेली बन जाती है।

प्रोफेसर अमर्त्य सेन अर्थशास्त्र की दुनियाँ में आज शिखर पर हैं। वे अमरीकी अर्थशास्त्र संघ के अध्यक्ष चुने गये हैं और नोबेल पुरस्कार के लिये उनका नाम प्रस्तावित है। 17 पुस्तकें, 200 शोध पत्र, 12 विश्वविद्यालयों से मानद डॉक्टरेट की उपाधि वाले प्रोफेसर अमर्त्य सेन पर न्यू यार्क टाइम्स ने एक पूरा पृष्ठ छापा है जिसमें विद्वान अर्थशास्त्रियों ने प्रोफेसर अमर्त्य सेन की बड़ाई के पुल बाँधे हैं। अपने लेखन से सरकारों की कार्यशैली बदलने वाले अमर्त्य सेन हृदयहीन अर्थशास्त्र में दिल की धड़कन कहे जाते हैं।

1943 में बँगाल में दाने-दाने को मोहताज हो कर मरे तीस लाख लोगों ने प्रोफेसर अमर्त्य सेन की जीवन-दिशा निर्धारित की। गरीबी मिटाने का संकल्प ले कर उन्होंने अर्थशास्त्र का अध्ययन आरम्भ किया। उनका निष्कर्ष : अनाज की पर्याप्तता के बावजूद 1943 में बँगाल में तीस लाख लोग भूख से मरे क्योंकि अनाज लोगों को देने की बजाय फौजों को दिया गया।

और अमर्त्य सेन ने रिसर्च फैक्ट्रियों में प्रवेश किया : जादवपुर विश्वविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, ऑक्सफोर्ड, कैम्ब्रिज, लन्दन स्कूल ऑफ इकॉनोमिक्स, लामांट विश्वविद्यालय की प्रोडक्शन लाइनों से गुजरते हुये अमर्त्य सेन अब हार्वर्ड विश्वविद्यालय में काम कर रहे हैं।

यह एक जानी-बूझी बात है कि मंडी की तीव्र होड़ ने 1939-45 वाले दूसरे विश्व युद्ध को जन्म दिया था। यह भी आम जानकारी की बात है कि युद्ध के दौरान खुलेआम हर चीज पर फौज का पहला हक होता है। लोगों की बजाय फौज को अनाज देने की वजह से 1943 में बँगाल में भूख से तीस लाख लोगों की मौत हुई थी। उन मौतों ने अमर्त्य सेन को अर्थशास्त्र के अध्ययन के लिये प्रेरित किया था। कई रिसर्च फैक्ट्रियों से गुजर कर प्रोफेसर अमर्त्य सेन आज शिखर के अर्थशास्त्री बन गये हैं। फौज से नफरत करने वाले, गरीबी और असमानता को मिटाने के लिये अर्थशास्त्र को चुनने वाले अमर्त्य सेन विनाश और विध्वंस की ओर धकेल रही मंडी तथा विनाश व विध्वंस के औजार, शक्तिशाली देशों के निर्माण को आज गरीबी और असमानता को दूर करने के जरिये बता रहे हैं।

चालीस-पचास करोड़ रुपये वार्षिक उत्पादन वाली एक मध्यम दर्जे की कम्पनी के मैनेजिंग डाइरेक्टर को वेतन का साठ प्रतिशत हाउस रेन्ट के तौर पर दिया जाता है। एम डी - चेयरमैन के मामलों में मैनेजमेन्टें हाउस रेन्ट का उचित हिसाब ही लगाती लगती हैं। मजदूरों को अपने लिये इसी प्रकार उचित हाउस रेन्ट के लिये, वेतन का साठ परसैन्ट हाउस रेन्ट प्राप्त करने के लिये कदम उठाने चाहियें।

(जानकारी हमने मुन्जल शोवा लिमिटेड की 29 अक्टूबर 1993 को हुई आठवीं वार्षिक जनरल मीटिंग की रिपोर्ट से प्राप्त की है।)

मैटल बॉक्स

15 जनवरी को आधी रात पुलिस की कई जिप्सियाँ 60 इन्डस्ट्रीयल एरिया स्थित मैटल बॉक्स फैक्ट्री के गेट पर पहुँची। पुलिस ने फैक्ट्री में काम कर रहे मजदूरों को मार-पीट कर खदेड़ा और मैनेजमेन्ट ने ताला लगा दिया तथा इसे प्रोडक्शन सस्पैन्ड कर देना कहा है। 16 जनवरी को फरीदाबाद से हरियाणा सरकार में दो मंत्रियों से पुलिस दमन की शिकायत करने पर मंत्रियों ने कुछ मजदूरों के सामने डी सी, एस पी से पूछा तो डी सी-एस पी ने कहा कि उन्हें मामले की कोई जानकारी नहीं है। पुलिस का फैक्ट्री पर पहरा बरकरार रहा।

मैटल बॉक्स में 1987 में की गई तालाबन्दी चालीस महीने बाद खत्म करते वक्त फरीदाबाद फैक्ट्री में मैनेजमेन्ट-यूनियन एग्रीमेन्ट बी आई एफ आर के निर्देशों के अनुसार की गई थी। उस एग्रीमेन्ट में वरकरों को महीने में 12 दिन काम देने, 1987 के वैतन में 20 परसैन्ट कटौती करके नया वेतन शुरू करने, तीन साल तक उस वेतन में भी वृद्धि नहीं जैसी बातें थी। 1987 में तालाबन्दी के समय मजदूरों की तरफ से निकले इश्तिहारों में बताया गया था कि मैटल बॉक्स मजदूरों ने कभी-भी आन्दोलन नहीं किया फिर भी मैनेजमेंट ने तालाबन्दी कर दी। और वह लॉकआउट 40 महीने चली थी तथा उपरोक्त एग्रीमेन्ट के बाद फैक्ट्री खुली थी।

झुक कर काम करने को राजी हुये मैटल बॉक्स वरकरों को मैनेजमेन्ट और झुकाती आई है। 1993 में ट्रक आपरेटरों द्वारा की गई तालाबन्दी और बिजली कटौती की आड़ में मैटल बॉक्स मैनेजमेन्ट ने "काम नहीं, वेतन नहीं" कह कर दो-दो महीनों का वेतन काट लिया था। इधर भी पैसों की तंगी कह कर दो महीनों का वेतन मैनेजमेन्ट ने नहीं दिया है। और, आर्डर नहीं होने की दलील दे कर मैनेजमेन्ट नई एग्रीमेन्ट पर जोर दे रही है जिसमें मैटल बॉक्स मजदूरों को महीने में 6 दिन काम दिया जायेगा। अपनी शर्त थोपने के लिये मैनेजमेन्ट ने फिर यह तालाबन्दी की है।

और, सात साल से लॉकआउट मैटल बॉक्स की कलकत्ता स्थित फैक्ट्री को मार्च में खोलने की एग्रीमेन्ट हो गई है जिसके अनुसार मजदूरों को महीने में छह दिन काम दिया जायेगा।

मैटल बॉक्स फरीदाबाद का घटनाक्रम आन्दोलन नहीं करने, झुकते जाने द्वारा किसी प्रकार गाड़ी खींचते जाने की कोशिशों को नाकारा साबित करता है। यह घटनाक्रम इस एम डी और उस मैनेजर को गाली देने को भी मात्र भड़ास निकालना साबित करता है। मैटल बॉक्स घटनाक्रम का अधिक महत्वपूर्ण सबक मंडी और उसकी लगातार बदलती प्रकृति के बारे में है। एक समय मैटल बॉक्स के प्रोडक्ट की मंडी में खूब माँग थी। आधुनिकतम मशीनों द्वारा मजदूरों से भारी मात्रा में प्रोडक्शन लेती मैटल बॉक्स कम्पनी अपने क्षेत्र में छाई हुई थी। फरीदाबाद के हिसाब से मैटल बॉक्स मजदूरों को उच्च वेतन मिलता था। मैटल पैकिंग को प्लास्टिक पैकिंग की चुनौती ने हालात में काफी फर्क ला दिया। मंडी की प्रतियोगिता में बने रहने के लिये मैटल बॉक्स मैनेजमेन्ट वेतन कटौती और छँटनी थोपने के लिये तालाबन्दियाँ कर रही है। खरीद-बिक्री और मोल-भाव द्वारा निर्धारित उत्पादन किस प्रकार मजदूरों के लिये दलदल है यह मैटल बॉक्स मजदूरों पर जो बीत रही है उसमें साफ-साफ उभरता है।

रेमिंगटन रैण्ड

फरीदाबाद, कलकत्ता और मैसूर में रेमिंगटन की तीन फैक्ट्रियाँ हैं जिनमें 2200 वरकर टाइपराइटर और अन्य दफ्तरी सामान बनाते हैं। 2200 में से 900 मजदूरों की छँटनी करना इस समय रेमिंगटन मैनेजमेन्ट के एजेन्डा में सबसे ऊपर है। छँटनी थोपने के लिये मैनेजमेन्ट ने कलकत्ता फैक्ट्री में आठ महीनों से तालाबन्दी की हुई है। फरीदाबाद फैक्ट्री में इस सिलसिले में अब तक घटनाक्रम संक्षेप में यह रही है :

वरकर कम करना जरूरी बता कर 10 अगस्त 93 को रेमिंगटन मैनेजमेंट ने फैक्ट्री में वर्क सस्पैन्ड कर दिया पर वरकरों को फैक्ट्री में 8 घन्टे डयूटी के वक्त हाजिर रहना जरूरी रखा। फिर मैनेजमेंट ने अक्टूबर 93 की तनखा नहीं दी और लीडरों ने अफवाह फैलाई कि फैक्ट्री बन्द हो रही है। इस पर फरीदाबाद फैक्ट्री में कार्यरत 190 मजदूरों में से 25 ने इस्तीफे दे दिये और बस। वरकरों द्वारा रिजाइन देना बन्द होने पर मैनेजमेन्ट ने मजदूरों को मैसूर ट्रान्सफर करने की धमकियाँ देना शुरू किया। लेकिन और किसी मजदूर ने नौकरी से इस्तीफा नहीं दिया। तब 3 दिसम्बर को मैनेजमेंट ने कैन्टीन बन्द कर दी और नवम्बर की तनखा भी मजदूरों को नहीं दी। 15 दिसम्बर को मैनेजमेन्ट ने फैक्ट्री में बिजली और पानी भी बन्द कर दिया। नियमित तौर पर फैक्ट्री आते और इस्तीफे के लिये दबाव झेलते रेमिंगटन फैक्ट्री के मजदूरों ने निष्क्रीयता-मिलीभगत खत्म करने के लिये 3 जनवरी को लीडर बदल दिये।

मजदूरों ने वेतन नहीं दिये जाने तथा इस्तीफों के लिये दबाव की शिकायत डी सी, डी एल सी, श्रम मंत्रालय हरियाणा सरकार, श्रम मंत्रालय केन्द्र सरकार और फरीदाबाद से एम पी को की पर इनसे हालात पर कोई फर्क नहीं पड़ा। रेमिंगटन मजदूरों ने 18 जनवरी 94 को पत्र द्वारा प्रधानमंत्री को भी इस तथ्य से अवगत कराने की कोशिश की है कि रेमिंगटन मैनेजमेंट ने उनका अक्टूबर, नवम्बर और दिसम्बर माह का वेतन नहीं दिया है।

मथुरा रोड़ पर प्लाट नम्बर 3, सैक्टर 6 स्थित फैक्ट्री के गेट पर मजदूरों ने काले झन्डे लगाये और मैनेजमेंट के आड़े-टेढे बुत बनाये। और फिर, **अपने तीन माह के वेतन के लिये 24 जनवरी को रेमिंगटन मजदूरों ने फैक्ट्री के अन्दर मैनेजमेन्ट का घेराव कर लिया।**

रेमिंगटन के गेट के पास से गुजरने पर ही पता चलता है कि फैक्ट्री में कुछ गड़बड़ है। क्या जलूसों का सिलसिला मैनेजमेन्ट की रेमिंगटन मजदूरों को भूखे मार कर चुपचाप छँटनी करने की स्कीम का भण्डा फोड़ने का एक अच्छा तरीका नहीं है? पर्चे छाप कर अपनी बात अन्य मजदूरों तक पहुँचाना और उनसे सहयोग की अपील करना, उम्मीद करना हमारे विचार से रेमिंगटन मजदूरों के लिये अपनी ताकत बढाने की राह पर एक कदम है।

मानव जीवन के प्रति यह लापरवाही क्यों?

27 जनवरी को बँगाल में आसनसोल के निकट न्यू केन्डा कोयला खदान में जमीन के पाँच सौ फुट अन्दर 55 मजदूर दम घुट कर मर गये। इसे एक दुर्घटना करार दिया जा रहा है जबकि यह हत्या का गम्भीर मामला है।

जनवरी 1933 में इन खदान क्षेत्रों से एक संवाददाता ने लिखा था, "खास झरिया कोलियरी क्षेत्र में कई दरारों से धुँआ और लपटें उठ रही हैं....स्थानीय लोग अपने घर-बार छोड़ कर भाग रहे हैं....नीचे लगी आग काबू से बाहर हो गई है।" 1935 में यह आग कुमुन्डा नयाडीह कोयला खदान क्षेत्र तक फैल गई। जनवरी 1936 में 37 मजदूर झरिया क्षेत्र की लोयाबाद खदान में इसी आग की वजह से हुये विस्फोट में मर गये थे। फरवरी 1936 में सरकार ने इस क्षेत्र की 29 खदानों के अन्दर 45 जगह लगी हुई आग का जिक्र किया। आग बुझाने के लिये सरकार ने इन खदानों को नदी जल से भरने पर विचार किया पर यह कह कर इस विचार को त्याग दिया कि इससे डेढ साल तक खदानों में काम बन्द करना पड़ेगा।

दिसम्बर 1936 में आसनसोल में फोयदी कोयला खदान में जमीन के अन्दर लगी इस आग की वजह से हुये विस्फोट में जमीन के अन्दर 600 फुट नीचे काम कर रहे 207 मजदूर मारे गये थे।

1992 में झरिया क्षेत्र में ही जमीन के अन्दर 70 जगह आग लगी थी। यह आग 60 साल से जल रही हैं। माइनिंग विशेषज्ञ यह सब जानते हैं। उनके पास ऐसी टैक्नोलॉजी और जानकारी है जिससे जमीन के अन्दर कोयले में लगी आग पर काबू पाया जा सकता है। और यह ज्ञान भी साठ साल से पुराना है।

कम से कम खर्च पर काम करवाने के चक्कर में मनुष्यों के जीवन से ऐसे खिलवाड़ को एक्सीडेन्ट कहते बहुत दिन हो गये हैं। इस हत्यारी प्रवृति को चुनौती हम कब देंगे?

(जानकारी हमने 31 जनवरी के टाइम्स ऑफ इंडिया में श्री दिलीप सिमियन के लेख से ली है।)

स्वत्वाधिकारी, प्रकाशक एवं सम्पादक शेर सिंह के लिए जे० के० ऑफसैट दिल्ली से मुद्रित किया। RN 42233 पोस्टल रजिस्ट्रेशन L/HR/FBD/73